|| श्रीहरि: ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

|| गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ||

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 18: मोक्षसंन्यासयोग

1/6 (श्लोक 1-11), शनिवार, 31 मई 2025

विवेचक: गीताव्रती श्रीमती श्रुति जी नायक

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/dbpUEU822C0

कर्म फल का त्याग

श्रीमधुराष्टकम्, श्रीकृष्णाष्टकम्, हनुमान चालीसा, परम्परागत दीप प्रज्वलन, श्रीकृष्ण वन्दना और गुरु वन्दना के साथ सत्र का आरम्भ हुआ।

योगेश्वर श्रीभगवान् और स्वामी जी की कृपा से गीताजी का स्पष्ट उच्चारण और निरन्तर उसका चिन्तन करते आ रहे हैं।

आज हम गीता जी के अन्तिम अट्ठारहवें अध्याय मोक्षसंन्यासयोग का चिन्तन और विवेचन सुनेंगे। इसके पहले सत्रह अध्यायों का विवेचन सम्पन्न हो चुका है।

इस अध्याय को ज्ञानेश्वर माउली जी एकाध्याय, कलश अध्याय कहते हैं। सारे वेदों का सार उपनिषद्, सारे उपनिषदों का सार श्रीमद्भगवद्गीता में है, गीता जी के सम्पूर्ण अध्यायों का सार इस एक अध्याय में है।

सम्पूर्ण अट्ठारह अध्यायों को मन्दिर माना गया है। इस मन्दिर का गर्भगृह भक्तियोग है। गीताजी का पन्द्रहवाँ अध्याय पुरुषोत्तमयोग, इस गर्भगृह का विग्रह है। जब हम मन्दिर नहीं जा सकते हैं, विग्रह का दर्शन नहीं कर पाते हैं, तब कलश का दर्शन करने मात्र से दर्शन का फल मिल जाता है।

इसलिए कहा जाता है, किसी कारणवश अगर आगे के सत्रह अध्यायों का विवेचन और पाठ न कर पायें तो अट्ठारहवें अध्याय का विवेचन सुन लेने मात्र से सम्पूर्ण गीता जी के पाठ का लाभ मिल जायेगा।

उदाहरण-
हमें जाना है और रेल का समय पाँच बजे का है। घड़ी सही समय नहीं दिखा पाने के कारण, जाने के लिए थोड़ा विलम्ब हो गया। किसी तरह चेष्टा करके रिक्शा द्वारा स्टेशन पहुँचते हैं। डिब्बे की सङ्ख्या ज्ञात होने पर भी, गाड़ी के अन्तिम डिब्बे में चढ़ जाते हैं। आगे अपने डिब्बे की खोज कर लेते हैं।

गीताजी का प्रथम अध्याय है, अर्जुनविषादयोग। श्रीकृष्ण अर्जुन के रथ के सारथी हैं। वे अर्जुन के कहने पर दोनों पक्षों के मध्य में ले जाकर अर्जुन का रथ खड़ा कर देते हैं। अर्जुन युद्ध में लड़ने के लिए आये हुए स्वजन देखकर विषाद से भर जाते हैं। युद्ध

नहीं करने के अनेक कारण श्रीकृष्ण को बताने लगते हैं। भिक्षा माँग लूँगा, संन्यासी बन जाऊँगा, लेकिन युद्ध नहीं करूँगा। अर्जुन को इसके पहले भी पता था कि उनको किस-किस के साथ युद्ध करना है।

दूसरे अध्याय से श्रीभगवान् गीता का उपदेश अर्जुन को देते हैं। प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य क्या है, ये श्रीभगवान् बता रहे हैं। स्तिथप्रज्ञ के लक्षण, भक्ति, ज्ञान, कर्मयोग के सम्बन्ध में बता रहें हैं।

पन्द्रहवें अध्याय तक सम्पूर्ण गीता का उपदेश समाप्त हो जाता है। नौवें अध्याय में एक श्लोक है-

मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः।
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः।।
9.12

ये सब आसुरी प्रवृत्ति वालों के लक्षण हैं। सोलहवें अध्याय में छब्बीस दैवीय गुणों और आसुरी लक्षणों के बारे में बताया है। श्रीभगवान् शास्त्रविहित कर्मों के बारे में बताते हैं।

अर्जुन के मन में प्रश्न उठता है कि जिन लोगों को शास्त्र का ज्ञान नहीं हैं, उनके कर्म क्या होते हैं? श्रीभगवान् श्रद्धात्रयविभागयोग समझाते हैं। अर्जुन को श्रीभगवान् के उपदेशों को सुनकर बड़ा आनन्द आ रहा है। वो श्रीभगवान् की वाणी को एवं और भी बहुत कुछ सुनना चाहते हैं। हमारा भी सत्रह अध्यायों को पढ़ने से, रुचि का विकास हो गया, हम भी अट्ठारहवाँ अध्याय सुनना चाहते हैं।

अच्छे वक्ता के प्रवचन को श्रोता बहुत मन लगाकर सुनता है और वक्ता भी सुनाना चाहता है।

ज्ञानेश्वर माउली कहते हैं, गाय का बछड़ा गाय का दूध पी लेने के बाद भी गाय के पास ही रहना चाहता है। एक माह का शिशु स्तन-पान करता हुआ, अपनी माँ को ही पहचानता है, इसलिए उसको छोड़ना नहीं चाहता है। ठीक ऐसा ही भाव अर्जुन का है।

इस अध्याय का आरम्भ अर्जुन के प्रश्न से हुआ है।

18.1

अर्जुन उवाच
सन्न्यासस्य महाबाहो, तत्त्वमिच्छामि वेदितुम्।
त्यागस्य च हृषीकेश, पृथक्केशिनिषूदन॥18.1॥

अर्जुन बोले - हे महाबाहो ! हे हृषीकेश ! हे केशिनिषूदन ! (मैं) संन्यास और त्याग का तत्त्व अलग-अलग जानना चाहता हूँ।

विवेचन- इस श्लोक में अर्जुन श्रीभगवान् को कहते हैं कि संन्यास और त्याग के तत्त्व को विस्तार से बताइये। इस श्लोक में अर्जुन ने श्रीभगवान् को तीन अलग-अलग नामों से सम्बोधित किया है।

हे महाबाहो! -
जिसकी बलिष्ट भुजाएँ है। अर्जुन को भी श्रीभगवान् ने महाबाहो कहा है।

हे केसरीसुदन!-
श्रीकृष्ण ने केशी नाम के दैत्य का मर्दन किया था, जो घोड़े के स्वरूप में था।

हे ऋषिकेश!-

जिसके वश में इन्द्रियाँ होती हैं। घोड़ा और इन्द्रियाँ दोनों बहुत चञ्चल होते हैं। स्थिरता नहीं होती है। श्रीभगवान् ने दोनों पर नियन्त्रण किया है। इन्द्रियों पर नियन्त्रण की शक्ति भी श्रीभगवान् द्वारा प्रदत्त है। ऐसे श्रीभगवान् से अर्जुन संन्यास और त्याग को तत्त्व से जानना चाहते हैं।

विश्वविद्यालय में किसी प्राध्यापक को विशेष विषय को विस्तार से बताने के लिए कहने पर, प्राध्यापक अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। विषय पर उनका पूरा अधिकार होने के कारण, प्रसन्नतापूर्वक प्राध्यापक विद्यार्थी को समझाते हैं।

18.2, 18.3

श्रीभगवानुवाच
काम्यानां(ङ्) कर्मणां(न्) न्यासं(म्), सन्न्यासं(ङ्) कवयो विदुः।
सर्वकर्मफलत्यागं(म्), प्राहुस्त्यागं(म्) विचक्षणाः॥18.2॥
त्याज्यं(न्) दोषवदित्येके, कर्म प्राहुर्मनीषिणः।
यज्ञदानतपःकर्म, न त्याज्यमिति चापरे॥18.3॥

श्रीभगवान् बोले - (कई) विद्वान् काम्य कर्मों के त्याग को संन्यास समझते हैंं (और) (कई) विद्वान् सम्पूर्ण कर्मों के फल के त्याग को त्याग कहते हैं। कई विद्वान ऐसा कहते हैं कि कर्मों को दोष की तरह छोड़ देना चाहिये और कई विद्वान ऐसा (कहते हैं कि) यज्ञ, दान और तपरूप कर्मोंका त्याग नहीं करना चाहिये। (18.2-18.3)

विवेचन- श्रीभगवान् अपने मत को बताने के पहले, संन्यास और त्याग के दूसरे के मतों को भी बता रहे हैं।

कुछ विद्वान काम्य कर्म के त्याग को और सम्पूर्ण कर्म के फल के त्याग को त्याग कहते हैं। ज्ञानी जन कर्म किए बिना रह ही नहीं सकते हैं। कर्म भी बहुत प्रकार के होते हैं।

विहित कर्म- जो स्वतः होता रहता है और समष्टि गत होता है।

नियत कर्म- जो कर्म हमें करने पड़ते हैं।

नियत कर्मों के भी पाँच प्रकार होते हैं-

1) नित्य कर्म- नियम से करने वाले कर्म। एक बार नियम ले लिया तो उसे नियमित करना होता है। नित्य कर्म का सङ्कल्प ले कर नहीं करने से पाप के भागी होते हैं। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि हमारे नित्य कर्म से किसी को कष्ट न हो।

उदाहरण- मैंने सुबह चार बजे शङ्ख बजाने का नियम ले लिया। मेरे सुबह शङ्ख बजाने से बहुतों की नींद ख़राब हो जायेगी। उनको कष्ट होगा।

हमने गीताजी के अट्ठारह अध्यायों के पाठ का नियम ले लिया, परन्तु इसके पहले यह विचार करके देखना चाहिये कि अट्ठारह अध्यायों के पाठ में कितना समय लगता है? बहुत समय लगेगा, उतनी देर पाठ करना सम्भव नहीं हुआ तो नियम टूटेगा।

एक-एक अध्याय का नित्य पाठ करते हुए, अट्ठारह अध्यायों का पाठ करने से नित्य नियम बना रहेगा।

2) नैमित्तिक कर्म- दीपावली या अन्य त्यौहारों पर किए जाने वाले विशेष कर्म, नैमित्तिक कर्म हुए।

अमावस्या, होली, गणेश चतुर्थी, जन्माष्टमी, एकादशी पर जो कार्य करते हैं, वो नैमित्तिक कर्मों में आयेंगे।

3) काम्य कर्म- इच्छा के लिए, भोगों की पूर्ति के लिए जो भी कर्म करते हैं, वो काम्य कर्म हुए। जैसे, राजा दशरथ जी ने पुत्र की प्राप्ति के लिए पुत्र कामेष्टि यज्ञ करवाया था।

कामना रख कर किया हुआ काम, काम्य कर्म हुआ।

4) प्रायश्चित कर्म- अपने किये हुए छोटे-छोटे गलत कर्मों का प्रायश्चित करते हैं।

किसी को कटु वचन बोला गया, उन वचनों को हम वापस तो नहीं ले सकते, किन्तु इसके लिए छोटे-छोटे दण्ड स्वयं को देने से फिर गलत कर्म नहीं होंगें। आजकल अत्यन्त दुःखी हूँ, ऐसा लोग बोल देते हैं।

प्रायश्चित स्वरूप, मन से अनुभव करते हुए, शान्त चित्त से ईश्वर का ध्यान करना चाहिए। बड़े-बड़े प्रायश्चित भी किये जाते हैं।

5) आवश्यक कर्म- खाना-पीना, सोना-जागना, व्यवसाय करके धन का उपार्जन करना, ये सब आवश्यक कर्म है।
अपने-अपने कर्मों को निष्ठा से करना चाहिये।

कहानी- एक राजा के राज्य में भूमि का बहुत बड़ा हिस्सा उबड़-खाबड़ था। राजा चाहता था, इस भूमि पर कोई सुन्दर भवन और भव्य मकानों का निर्माण कर दे। किसी प्रसिद्ध भवन निर्माण करने वाले राजमिस्त्री को बुलाया गया, भव्य भवन के निर्माण के लिए बोला गया।

राजमिस्त्री ने बड़ी कुशलता से दो साल में बहुत से अति सुन्दर मकानों एवं भवनों का निर्माण कर दिया। राजा और प्रजा दोनों ही बहुत प्रसन्न थे। राजा ने बहुत उपहार भी उनको प्रदान किए।

कार्य भी पूर्ण हो गया था, राजमिस्त्री लोग भी थक चुके थे। उन लोगों ने राजा के पास जाकर अपने देश जाने की आज्ञा माँगी।

राजा ने कहा, बस मेरे अत्यन्त सुन्दर उद्यान में, अभी का सबसे सुन्दर भवन का निर्माण कर दो। धन की कदाचित भी चिन्ता मत करना। बस ये अन्तिम कार्य है, फिर चले जाना।

राजमिस्त्री लोग थके हुए थे, राजा की आज्ञा थी, अन्तिम भवन था, शीघ्र उन्होंने भवन का निर्माण कर दिया। राजा ने पूछा, बहुत अच्छे भवन का निर्माण किया है न? राजमिस्त्री ने कहा, अच्छा भवन ही बनाया है।

राजा ने कहा, वह भवन, मैं तुम्हें पुरस्कार स्वरूप प्रदान करता हूँ, तुम अपने परिवार सहित आकर उसी में रहो।

राजमिस्त्री को मन में थोड़ा दुःख हुआ, अगर पहले पता होता तो सही में ये भवन वो श्रेष्ठतम् बनाता।

हमें सभी कर्मों को श्रेष्ठ और पूरे मनोयोग से, सौ प्रतिशत प्रयास से करना चाहिये। क्या पता हमारे ही कर्म हमारे पास लौट कर आ जायें।

हम संन्यासी उसको कहते हैं, जो गेरुए वस्त्र पहनते हैं और काम्य कर्मों का त्याग कर देते हैं। गृहस्थ भी एक उम्र के बाद संन्यास धर्म का पालन करते हैं। कुछ विद्वान कर्मफल के त्याग को संन्यास कहते हैं। गीताजी के दूसरे अध्याय में आया है।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।।
2.47

कर्मफल की इच्छा का त्याग ही त्याग है। माँगना कुछ भी नहीं है। सम्पूर्ण कर्मों को करके कृष्ण को समर्पित कर देना चाहिये।

श्रीकृष्णार्पणमस्तु।।

तीसरे तरह का विद्वानों का मत है कि दोष वाले कर्मों का त्याग कर देना चाहिये।

कुछ मनीषी कहते हैं, यज्ञ, दान, तप आदि कर्मों का कभी भी त्याग नहीं करना चाहिये । ऐसे कर्म अवश्य करने चाहिये।

चार तरह के ज्ञानियों के मत को बताया है। हमारे श्रीभगवान्, गुरु द्वारा जो भी कहा जाता है, उसको हम मानते हैं। अर्जुन भी श्रीभगवान् के मत को जानना चाह रहे हैं।

18.4

निश्चयं(म्) शृणु मे तत्र, त्यागे भरतसत्तम।
त्यागो हि पुरुषव्याघ्र, त्रिविधः(स्) सम्प्रकीर्तितः॥18.4॥

हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ अर्जुन ! (तू) संन्यास और त्याग - इन दोनों में से पहले त्याग के विषय में मेरा निश्चय सुन; क्योंकि हे पुरुषश्रेष्ठ ! त्याग तीन प्रकार का कहा गया है।

विवेचन- इस श्लोक में श्रीभगवान् अर्जुन को भरतवंशियो में श्रेष्ठ एवं पुरूषों में श्रेष्ठ बोलते हैं। जो भी धर्म के मार्ग पर चलते है, वो श्रेष्ठ हुए।

भगवत् मार्ग पर चलते हुए मन में संशय नहीं होना चाहिये। रुचि, श्रद्धा और विश्वास को रखने वालों को ही धार्मिक बातें सिखानी चाहिए। श्रद्धा, विश्वास, रुचि से युक्त होने के कारण ही श्रीभगवान् अर्जुन को अपना मत बताते हैं। सर्वप्रथम संन्यास और त्याग में भी त्याग के सम्बन्ध में विस्तार से श्रीभगवान् बता रहे हैं कि तीन तरह के त्याग होते हैं।

18.5

यज्ञदानतपःकर्म, न त्याज्यं(ङ्) कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं(न्) तपश्चैव, पावनानि मनीषिणाम्॥18.5॥

यज्ञ, दान और तपरूप कर्मों का त्याग नहीं करना चाहिये, (प्रत्युत) उनको तो करना ही चाहिये (क्योंकि) यज्ञ, दान और तप - ये तीनों ही (कर्म) मनीषियों को पवित्र करनेवाले हैं।

विवेचन- इस श्लोक में श्रीभगवान् कह रहे हैं कि संन्यासी और त्यागी सभी को यज्ञ, दान और तप करना चाहिए।

यज्ञ- हवन को ही यज्ञ नहीं कहते हैं। पूजा-पाठ, गुरुजन की आज्ञा का पालन और सेवा भी यज्ञ है।

दान- धन का दान ही दान नहीं है। समय और विद्या का भी दान दिया जा सकता है।

तप- हिमालय पर बैठ कर, तपस्या करना ही तप नहीं है। परिश्रम करना, कष्टों को उठाना भी तप है। ऐसे कर्मों द्वारा मन शुद्ध और पवित्र हो जाता है। शुद्ध हृदय वालों को, समत्व बुद्धि रखने वालों को जो कर्म फल का त्याग कर देते हैं, उनको मनीषी कहा जाता है।

यज्ञ, लोककल्याण के लिए होना चाहिए। श्रद्धात्रयविभागयोग में हमने देखा यज्ञ की क्या विधि है? लोककल्याण के लिए किए जाने वाले यज्ञ की सुगन्ध चारों ओर फैल जाती है। औषधि और शुद्ध घी से किया जाने वाले यज्ञ से स्वास्थ्य भी ठीक रहता है।

श्रीभगवान् की पूजा नित्य और निष्काम भाव से करनी चाहिए।

प्रश्न उठ सकता है कि यदि कुछ माँगना ही नहीं है तो पूजा, तप क्यों करना चाहिए? दैनिक जीवन में कुछ भी खरीदते हैं, तो सरकार को कर प्रदान करते हैं। पानी का कर, आमदनी पर कर, रास्ते पर चलते हैं, वाहन चलाते हैं आदि सभी पर कर देते हैं। श्रीभगवान् ने तो हमें बहुत कुछ दिया है, निष्काम भाव से की जानी वाली पूजा द्वारा उनको अनुग्रह का कर दे सकते हैं।

दान देने से कम हो जायेगा, ऐसा साधारण विश्वास बहुत से लोगों में होता है। दान से धन की वृद्धि ही होती है, जो दान देते हैं, उन्हें इसका अनुभव है। करोड़ो की राशि का दान व्यक्ति कर देता है। बच्चों को भी संस्कार रूप से दान की महिमा को बताना और सिखाना चाहिए।

नित्य छोटे-छोटे दान स्वरूप अन्न और वस्त्र का दान दे सकते हैं।
ये भी नहीं तो समय का दान दे सकते हैं। वृद्ध लोगों के साथ समय व्यतीत कर सकते हैं, उनके साथ बात-चीत कर सकते हैं, सहायता कर सकते हैं।

तप- व्रत और उपवास भी तप है। उपवास से संयम और जीवन सन्तुलित होता है। तप से हमारे व्यक्तित्व में निखार आ जाता है।

अपने घर की रङ्ग पुताई करने से घर कैसे सुन्दर दिखने लगता है, वैसे ही शास्त्रों के अनुकरण से, यज्ञ, दान, जप-तप से व्यक्तित्व निखरता है, हमें नित्य इन कर्मों को करना भी चाहिये ।

18.6

एतान्यपि तु कर्माणि, सङ्गं (न्) त्यक्त्वा फलानि च।
कर्तव्यानीति मे पार्थ, निश्चितं (म्) मतमुत्तमम्॥18.6॥

हे पार्थ ! इन (यज्ञ, दान और तपरूप) कर्मों को तथा (दूसरे) भी (कर्मों को) आसक्ति और फलों की इच्छा का त्याग करके करना चाहिये - यह मेरा निश्चित किया हुआ उत्तम मत है।

विवेचन- जप-तप, दान, यज्ञ के कर्म में आसक्ति होनी चाहिये, कर्म के फल में नहीं। कर्म में आसक्ति होने से कर्म अच्छी तरह किया जा सकता है। कर्त्तापन का अभिमान नहीं होना चाहिये । मैं-मैं का भाव नहीं होना चाहिये ।

आजकल अपने द्वारा की हुई हर छोटी बड़ी बात का प्रचार करने के लिए ह्वाट्सऐप के स्टेटस में लगा देते है। लोग देखें और पसन्द करें। लोगों के नहीं देखने से मन में निराशा भी होती है।

गीता पाठ कर रहे हैं, आपने विज्ञापन की भावना से नहीं, अन्य लोगों की रुचि जागे, इस भाव से कुछ भी साधन से प्रसारित किया है, तो उसमें मैं पन नहीं होने से प्रशंसनीय है।

कई बार विवेचन की पूरी तैयारी के बाद भी विवेचन करने वाले सेवाव्रती कुछ बताना भूल जाते हैं, मन में आशङ्का आ जाती है, विवेचन कैसा होगा? ऐसी ही मनोदशा परीक्षा देने जाने वाले विद्यार्थी की भी हो जाती है। श्रीभगवान् पर सब छोड़ देना चाहिये। तैयारी का कर्म सौ प्रतिशत देकर करना चाहिए।

कर्त्तापन के भाव से नहीं, वरन कर्त्तव्य के भाव से यज्ञ, तप, दान नित्य करना चाहिए। जो हमारे पास है, उसी का दान करना चाहिये।

ये नित्य कर्म लोककल्याण और श्रीभगवान् की प्रसन्नता के लिए करना चाहिये। श्रीभगवान् भक्त के शुद्ध भाव से प्रसन्न होते हैं।

कई साधक मन्दिर में जाकर श्रीविग्रह का स्पर्श करने को ही पूजा आराधना मानते हैं। ऐसा नहीं होना चाहिये। दूर से शुद्ध भाव से दर्शन करने से श्रीभगवान् प्रसन्न होते हैं। कर्त्तव्य पालन ही पूजा आराधना है, इस भाव से श्रीभगवान् से निकटता का बोध होता है।

कर्मों से नहीं बँधना चाहिये। मन से की हुई पूजा को भी श्रीभगवान् स्वीकार करते हैं। ये श्रीभगवान् इस श्लोक में अर्जुन को बता रहे हैं।

श्रीभगवान् ने तीन तरह के त्याग बताये हैं। सात्त्विक, राजसिक और तामसिक त्याग। इसमें सात्त्विक त्याग सबसे श्रेष्ठ है, इसी से श्रीभगवान् प्रसन्न होते हैं ।

18.7

नियतस्य तु सन्न्यासः(ख्), कर्मणो नोपपद्यते।
मोहात्तस्य परित्याग: (स्), तामसः(फ्) परिकीर्तितः॥18.7॥

नियत कर्म का तो त्याग करना उचित नहीं है। उसका मोहपूर्वक त्याग करना तामस कहा गया है।

विवेचन- इस श्लोक में श्रीभगवान् तामसिक त्याग के बारे में बता रहे हैं। कुछ लोग कर्म का फल बुरा-भला हो सकता है, इसलिए कर्म का ही त्याग कर देते हैं। यह तामसिक त्याग कहलाता है।

कुछ लोग कर्म करने से कुछ गलतियाँ हो जायेंगी, इस भय से भी कर्म का त्याग कर देते हैं। इस भय से कर्म का त्याग करने वालों को पाप लगता है। नियत कर्म का त्याग उचित नहीं है। मोह के वशीभूत होकर भी कर्म का त्याग तामसिक त्याग है। मोह, प्रमाद आदि तामसी गुण है।

हमारे यहाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शुद्र के वर्णों के अनुरूप और आश्रमों के अनुरूप ब्रह्मचारी, गृहस्थ, संन्यासी के भी शास्त्रानुकूल कर्म हैं, उन कर्मों का त्याग नहीं करना चाहिये।

क्षत्रिय होते हुए भी, अर्जुन हिंसा के भय से युद्ध नहीं करना चाहते थे। श्रीभगवान् कहते हैं कि अर्जुन तुम क्षत्रिय हो, युद्ध तुम्हारा धर्म है। अभी युद्ध नहीं करने से तुम कायर कहलाओगे, तुम्हारा पतन हो जाएगा।

हमारे घरों में सत्यनारायण भगवान् की पूजा होती है। आधुनिक युग में कई लोग, बहुत सी तैयारियाँ करनी होंगी, फिर सम्पन्न हो जाने पर भोग, प्रसाद बनाना पड़ेगा, लोगों को बुलाना पड़ेगा, घर की साफ-सफाई करनी होगी, ये करने के पहले ही सोच कर पूजा का त्याग कर देते हैं। ये उचित नहीं है। शास्त्र विधि से पूजा पद्धति का पालन करने से हमारी आने वाली पीढ़ी भी जानेगी। छोटे रूप में ही सही पूजा अवश्य करनी चाहिए।

मोह और प्रमादवश कर्म का त्याग तामसिक त्याग है।

18.8

दुःखमित्येव यत्कर्म, कायक्लेशभयात्त्यजेत्।
स कृत्वा राजसं(न्) त्यागं(न्), नैव त्यागफलं(म्) लभेत् ॥18.8॥

जो कुछ कर्म है, वह दुःखरूप ही है - ऐसा (समझकर) कोई शारीरिक परिश्रम के भय से (उसका) त्याग कर दे, (तो) वह राजस त्याग करके भी त्याग के फल को नहीं पाता।

विवेचन- जो लोग कार्य करते हुए, परिश्रम करना होगा, कष्ट होगा, इस भाव से कर्म का त्याग करते हैं, उनका त्याग राजसिक

है।

पण्डित जी को दक्षिणा देकर पूजा करवाने से, स्वयं के पूजा में हिस्सा नहीं लेने से, पूजा का फल स्वयं को नहीं मिलेगा। ऐसा त्याग राजसिक त्याग कहलाता है।

18.9

कार्यमित्येव यत्कर्म, नियतं(ङ्) क्रियतेऽर्जुन।
सङ्गं(न्) त्यक्त्वा फलं(ञ्) चैव, स त्यागः(स्) सात्त्विको मतः॥18.9॥

हे अर्जुन ! 'केवल कर्तव्य मात्र करना है' -- ऐसा (समझकर) जो कर्म आसक्ति और फलेच्छा का त्याग करके किया जाता है, वही सात्त्विक त्याग माना गया है।

विवेचन- उत्तम श्रेणी का त्याग सात्त्विक त्याग ही है। निष्काम भाव से कर्त्तापन के त्याग के भाव से किया जाने वाला कर्म सात्त्विक त्याग कहलाता है। मैं सभी कर्मों का कर्ता नहीं निमित्त मात्र हूँ।

बच्चों का पालन-पोषण, माता-पिता की सेवा शुद्ध भाव से, कर्त्तव्य समझ के करना चाहिए। पिता की सम्पत्ति मिलेगी, इस भाव से किया जाने वाला कर्म सात्त्विक नहीं कहलाता।

18.10

न द्वेष्ट्यकुशलं(ङ्) कर्म, कुशले नानुषज्जते।
त्यागी सत्त्वसमाविष्टो, मेधावी छिन्नसंशयः॥18.10॥

(जो) अकुशल कर्म से द्वेष नहीं करता (और) कुशल कर्म में आसक्त नहीं होता, (वह) त्यागी, बुद्धिमान्, सन्देह रहित (और) अपने स्वरूप में स्थित है।

विवेचन- **कुशल और अकुशल कर्म**

कुशल कर्म-
निष्काम भाव से यज्ञ, तप दान आदि कुशल कर्म हैं। कुशल कर्मों से जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं।

अकुशल कर्म-
फल की इच्छा और आसक्ति से किए जाने वाला कर्म अकुशल कर्म है, जो पुनर्जन्म का कारण भी होता है और जिसके कारण नीच योनियों में भी जन्म होता है।

जो मनुष्य अकुशल कर्म से द्वेष का भाव नहीं रखता और कुशल कर्म के प्रति आसक्ति का भाव नहीं रखता, जिसकी भावना शुद्ध है, ऐसा मनुष्य सत्व गुणों से युक्त होता है। उसको अपने कर्मों में संशय नहीं होता, सभी कुछ श्रीकृष्ण को अर्पित, ऐसा सोचने वाला सच्चा त्यागी है।

18.11

न हि देहभृता शक्यं(न्), त्यक्तुं(ङ्) कर्माण्यशेषतः।
यस्तु कर्मफलत्यागी, स त्यागीत्यभिधीयते॥18.11॥

कारण कि देहधारी मनुष्य के द्वारा सम्पूर्ण कर्मों का त्याग करना सम्भव नहीं है। इसलिये जो कर्मफल का त्यागी है, वही त्यागी

है - ऐसा कहा जाता है।

विवेचन- देहधारी मनुष्यों के द्वारा कर्मों का सम्पूर्ण त्याग सम्भव नहीं है। कर्म फल का त्याग कर सकते हैं। यही त्याग है।

कर्म करते समय, कामना का, फल का त्याग, छोड़ते हुए, द्वेष भी न हो, ये सात्त्विक त्यागी के गुण हैं।
इसी के साथ आज के विवेचन सत्र का समापन हुआ और प्रश्नोत्तर सत्र का आरम्भ हुआ।

प्रश्नोत्तर सत्र

प्रश्नकर्ता- ऋचा दीदी
प्रश्न- दो प्रकार के कर्म कौन कौन से होते हैं?
उत्तर- दो प्रकार के कर्म होते हैं-
1) विहित कर्म
2) नियत कर्म

प्रश्नकर्ता- ऋचा दीदी
प्रश्न- मनीषी का क्या अर्थ है?
उत्तर- मनीषी का अर्थ ज्ञानी होता है।

प्रश्नकर्ता- मोहेर भैया
प्रश्न- तामसिक त्याग क्या है?
उत्तर- जो त्याग कीर्ति प्राप्ति अथवा अभिमान की भावना से किया जाए।

।।ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु।।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
Let’s come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||